IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

रामदरष मिश्र के आंचलिक उपन्यासों में मानव–मूल्य का विष्लेशणात्मक अध्ययन

पूजा षर्मा
षोध छात्र (हिन्दी विभाग)
जीवाजी विष्वविद्यालय
ग्वालियर म.प्र.

षोध सार

आजादी से जुड़े समता, समानता, न्याय आदि मूल्य संकटग्रस्त दिखायी देते हैं। महीप सिंह जैसे जो लोग कल तक साम्राज्यवादी सत्ता के मजबूत पाये थे, अपने दमनचक्र से जनता को पोसा करते थे, आजादी के बाद वे स्वदेशी बाना धारण कर लेते हैं, और आजादी के लिए जूझने वाला आम आदमी जहां का तहां उपेक्षित और ठगा–सा रह जाता है।

मिश्र जी ने जग्गू हरिजन के माध्यम से वास्तविक स्वाधीनता सेनानियों की उपेक्षा का बयान किया है। यह बयान एक देशव्यापी हादसे को खोलने वाला है। जग्गू हरिजन आजादी के संग्राम में तिरंगा उठाए घूमे थे। लेकिन आजादी मिलने पर उनकी स्थिति गरीबी की रेखा के नीचे का जीवन जीने वाले वर्ग की ही रही। पत्तल उठाना और गोबर की रोटी खाना उनकी विवशता है। उनके अपने दलित समुदाय की आर्थिक–सामाजिक स्थिति पर कोई फर्क नहीं पड़ा है– सभी बामन उनके मालिक हैं–ये बामन चाहे बाहर भीख ही क्यों न मांगते हों, मिलों की दरबानी, चपरासगिरी और कुलीगीरी ही क्यों न करते हों, रिक्शा ही क्यों न हांकते हों, चोरी–डकैती ही क्यों न करते हों, लेकिन गांव में सभी हरिजनों के मालिक हैं।

मुख्य बिन्दु– आंचलिक उपन्यासों, मानव–मूल्य, साम्राज्वादी, संकटग्रस्त, दमनचक्र, जूझने, उपेक्षित, स्वाधीनता, देषव्यापी, आर्थिक, सामाजिक, चपरासगिरी, कुलीगीरी।

षोध प्रपत्र

डॉ. विवेकी राय ने 'जल टूटता हुआ' की चर्चा देशव्यापी मोहभंग के संदर्भ में की है. इसमें संदेह नहीं कि इसमें व्यक्ति यथार्थ 'स्वतंत्रता' से जुड़ी आशाओं को तार–तार कर देनेवाला है। लेकिन इसमें तथ्यचेतना के समानान्तर जो मूल्यचेतना है वह पाठक को हताश–निराश करने के बजाय अवमूल्यों के प्रतिवाद का बन प्रदान करती है। यह पात्र टूटते हुए मूल्यों और बढ़ती हुई विसंगतियों को उभारते हैं और परिवर्तन की झंझा के पद संचारों का आभास देते हैं। परंतु ये सारे पद–सचार अलक्षित रह जाते–जैसा कि कई व्यंग्य प्रधान आधुनिक उपन्यासों में रह गये हैं, यदि सतीश, उमाकांत बदमी और कुंजू जैसे अविचल दृढ़ चरित्र पात्र इसमें न आये होते।

यहां आचार्य द्विवेदी ने जिस अविचल दृढ़ता की चर्चा की है, वह पात्रों की जीवन–मूल्यों में गहरी आस्था और वचन–कर्म की एकता से निर्मित है। इस उपन्यास में लवंगी ने जो सवाल पूछा है, वह वर्तमान दलित चेतना का एक प्रखर अंग है–**''चमार का खून–खून नहीं है, बामन का खून–खून है। हमारी कोई इज्जत नहीं होती, क्या बामनों की ही इज्जत होती है?' सतीश आदि चरित्र इस उपन्यास में अवमूल्यों से जूझ रहे हैं और लहूलुहान हो रहे हैं, लेकिन सकारात्मक मानवीय मूल्यों में**

उनका विष्वास बना हुआ है–'सत्य के लिए मूल्य तो देना ही पड़ता है, और जब तक कुछ लोग संगठित होकर मूल्य देने को तैयार नहीं होंगे और दूसरों की देखादेखी असत्य की ओर उन्मुख होते रहेंगे, तब तक गांव का क्या देश का और पूरे विष्व का उद्धार नहीं होगा?'

मिश्र जी के तीसरे उपन्यास 'बीच का समय' में कथ्य बदला हुआ है। इसमें काम–संबंधों के संदर्भ में नैतिकता का सवाल सिर उठाए खड़ा है। प्रोफेसर शील और छात्रा रीता के लगाव में कई वर्जनाएं–बाधाएं हैं। तमाम द्वंद्व के बीच में प्रो. शील को अपनी उस पत्नी के प्रति जिम्मेदारी का अहसास है, जो गांव में है। पत्नी अनपढ़ है, सुंदर भी नहीं है, शिक्षित पति की वास्तविक सहचरी बनने में अक्षम है लेकिन पति विवाह–विच्छेद जैसा कोई कदम नहीं उठाता। इसी तरह रीता भी नहीं चाहती कि क्षणिक उबाल में उसके पूज्य की प्रतिमा टूटे और चकनाचूर हो जाये। विवाहेतर देहसंबंध मिश्र जी के उपन्यासों में हैं, लेकिन वे बहुत अपरिहार्य होने पर ही स्वीकृत हैं।

माध्यम से नयी मूल्यवत्ता को प्रतिष्ठित करने का आग्रह भी सक्रिय है। लेकिन 'बीच का समय' में मिश्र जी ने यौन–वर्जनाओं के उल्लंघन की जरूरत नहीं समझी है। 'बीच का समय' का शील प्रेम को उसके असली रूप में 'जंगली' मानता है लेकिन उपन्यासकार का स्टैंड रीता की मानसिकता के मेल में है। वह शील से पूछती है–**''कैसा लगता है सर, जब एकाएक कोई आदर्शमूर्ति टूटकर वहीं गिर जाती है, जहां हजारों–लाखों सामान्य मूर्तियां गिरी होती हैं।' मिश्र जी के प्रायः सभी उपन्यासों में प्रेम एक उदात्त मूल्य के रूप में है, यह यदि देहभोग में परिणत हुआ भी है तो किसी विसंगति को चुनौती देने के लिए या किसी नयी मूल्य मर्यादा की ओर संकेत करने के लिए।''**[2]

'सूखता हुआ तालाब' में गांव के भविष्य की चिंता प्रमुख हैः 'क्या होगा गांव का, जहां जड़ता इतनी कि एक बेवकूफ आदमी भी सोखा–ओझा बनकर ठग ले और जहां चालाकी इतनी कि हर आदमी अपने स्वार्थ के लिए दूसरे को बेच खाये।' 'सूखता हुआ तालाब' एक तरह से 'जल टूटता हुआ' का संक्षिप्त संस्करण है। इसमें गांव की तोड़ने वाली ताकतें और भी मजबूत हुई हैं। इसलिए मूल्यों में विष्वास रखने वाले देवप्रकाश को गांव से पलायन करना पड़ता है. लेकिन शंकर का सरपंच बनना संकेत है कि बेहूदगियों से जूझने के रास्ते बंद नहीं हुए हैं. यथार्थ बोध के स्तर पर अभी बहुत कुछ बचा हुआ है। यह विष्वास मिश्र जी के एक अन्य उपन्यास 'अपने लोग' में भी दिखायी देता है। बाद के उपन्यासों में 'रात का सफर', 'बिना दरवाजे का मकान', 'थकी हुई सुबह', मुख्यतः नारी के संघर्ष की कहानी कहते हैं। अतः इनमें नारी संबंधी रूढ़ियों और अवमूल्यों का प्रतिकार स्वाभाविक तौर पर काफी जगह घेरता है।

'रात का सफर' में पत्नी के साथ छल और अत्याचार को खारिज किया गया है। इस उपन्यास में ऋतु का अपने डॉक्टर पति को चांटा मारना पुरुष के सनातन एकाधिकार को चुनौती के साथ–साथ 'सतीत्व', 'पतिव्रत' आदि मूल्यों को नये संघर्ष में देखने–परखने की शुरुआत भी है। इस उपन्यास के एक पात्र का यह कथन सकारात्मक दिशा में संक्रमण का द्योतक और प्रेरक है–**''प्रेम के शव को ढोने से कोई फायदा नहीं है ''ऋतु! जीवन अमूल्य होता है। इससे संबंधित जब किसी वस्तु का मूल्य चुक जाये तो उसे छोड़ नहीं देना चाहिए?''**[3]

नारी के संबंध में 'जिजीविषा' और अपने अस्तित्व–व्यक्तित्व को बचाये रखने की चिंता 'बिना दरवाजे का मकान' आदि कृतियों में भी व्यक्त हुई है। मिश्र जी के उपन्यासों में 'मंजरी' (अपने लोग), 'बदमी', 'लवंगी (जल टूटता हुआ), 'दीपा' (बिना दरवाजे का मकान), 'रूपमती' (आकाश की छत), 'लक्ष्मी' (थकी हुई सुबह) आदि अनेक नारी चरित्र अपनी प्रखरता के चलते ध्यान खींचते हैं। इनके माध्यम से मिश्र जी ने यौन–नैतिकता से लेकर नारी मुक्ति तक के सवालों पर विचार किया है। **''इस विचार–विमर्श से 'मुक्ति', 'सहयोग', 'सतीत्व', 'पतिव्रत', 'श्रद्धा–सम्मान' आदि मूल्य कठिन आजमाइश**

के दौर में है। इनमें से अधिकतर नारियां शक्ति–पुंज हैं और पुरुष–प्रधान व्यवस्था द्वारा लादे गये मूल्यों से असहमति जताती हैं।''[4]

रामदरश मिश्र ने 'पानी के प्राचीर' नामक उपन्यास में पूर्वी उत्तरप्रदेष के कछार अंचल की कथा कही है। जिसका संबंध आजादी के पूर्व की स्थिति को दर्षाया है। वहाँ के भू–भाग समय को चेतन्य करते हैं तथा कछार अंचल को अपनी संपूर्णता में उभारने का प्रयास किया है। उनके उपन्यास में ग्रामीण परिवेष की सम्पूर्णता है। जिसमें वहां की लोक संस्कृति एवं लोक तत्व है।

शहर अपने पंख उस क्षेत्र विशेष में किस कौशल से फैला रहा है और धीरे–धीरे किस तरह गाँव मर रहा है और शहर प्रवेश कर रहा है, इसका भी यथार्थ चित्रण उनके उपन्यासों में हुआ है। रामदरष मिश्र ने 'पानी के प्राचीर' में जनसाधरण का जीवन दर्षाया है। जिसमें गाँव के लोग वस्त्रहीन गरीबी जीते थे। बाढ़, प्लेग और अकाल उनके जीवन से जुड़ा हुआ था। विदेषी दासता चक्र में पूरा गाँव फँसा हुआ था। गाँव का हर व्यक्ति संघर्ष करता था अपना पेट भरने के लिए।

''नीरू ने थोड़ा–सा सत्तू लिया और दो सेर आटा चल पड़ा शहर की ओर माँ आँखों में आँसू–भर उसे विदा दे रही थी...सुमेश सिवान तक पहुँचाने आ गए थे। इधर माँ सिसक रही थी। छिः, वह क्यों सिसकती है? बेटा तो कमाने जा रहा है, रुपये लाएगा, घर भर जाएगा। अभावों की मार से जर्जरित नीरू जब गोरखपुर 760 पहुँचता है, तो उसके गाँव का ही मलिन्द जैसे उसे पहचानने से ही इनकार कर देता है। लेखक ने ग्रामीण संघर्ष को बताया है जिसमें जीवन का भविश्य को बनाने के लिए नीरू संघर्ष करता है। जिससे अपने जीवन को यथार्थमयी बना सके।''[5]

रेणु के 'मैला आंचल' से प्रेरित होकर रामदरश मिश्र जी ने अपने प्रथम उपन्यास 'पानी के प्राचीर' की रचना की। इस उपन्यास में मिश्र जी ने अपने गांव पांडेपुरवा से परिचित करवाया है। यह गाँव दो नदियों राप्ती और गोर्रा के मध्य स्थित है। अतः इसका बाह्य संसार से कोई जीवंत और रचनात्मक सम्बन्ध नहीं रह गया है। नदियों की भूखी धाराओं ने गाँव की सारी हरियाली को विवशता, अभाव और संघर्ष का रूप दे दिया है। यह ग्रामांचल प्राकृतिक प्रकोप के साथ–साथ जमींदारों, पूंजीपतियों और पुलिस के अत्याचार का भी शिकार है। मिश्र जी के शब्दों में, **''पानी के प्राचीर का कथाचंल गोरखपुर जिले में राप्ती और गोर्रा नदियों की धाराओं से घिरा हुआ एक विशाल भू–भाग है, जो युगों से अपनी सारी हरियाली नदियों की भूखी धाराओं को लुटाकर केवल विवशता, अभाव, और संघर्ष के रूप में शेष रह गया है।''[6]** संस्कार के सारे सूत्रों से कटा हुआ यह प्रदेश अपने आप में एक संसार है, यहाँ न सड़कें हैं, न शिक्षा संस्थाएँ, सुविधापूर्ण डाकखाने हैं, न सुरक्षा के लिए पुलिस चौकियाँ हैं, न चिकित्सालय है, न खेतों के सुधार और विकास के लिए कोई सरकारी या गैर सरकारी व्यवस्था है। यहाँ है– **''असुज्ञ, गरीबी, व्यापक, अषिक्षा, अजगरों की तरह बलखाते दौड़ते ऊँचे–नीचे वाले, बीमारी आपसी फूट और सदियों पुरानी जर्जर नैतिक मान्यताएँ। इस वीरान प्रदेष में नेता आते हैं, केवल वोट लेने, सरकारी कर्मचारी आते हैं लोगों को लड़ाकर अपना उल्लू सीधा करने मिश्र जी ने गाँव के तीज–त्यौहारों, मेलों, लोकगीतों खेतों आदि के द्वारा संवेदना की परतों तथा कथा–सूत्रों की सृश्टि भी की है।''[7]**

नारियों की तरह ही रामदरश मिश्र के उपन्यासों में आये दलित चरित्र भी मानवीय और जनतांत्रिक मूल्यों के लिए जूझ रहे हैं। उपन्यासकार ने अपनी उपन्यास–यात्रा के प्रथम चरण से लेकर आज तक दलितों के उत्पीड़न का न केवल खुला विरोध किया है। अपितु समता, समानता, न्याय आदि मूल्यों का जबर्दस्त समर्थन भी किया है। 'जल टूटता हुआ' में हरिजनों या दलितों में अपने प्रति होने वाले अन्याय की चेतना जड़ पकड़ चुकी है। वे सामंती शक्तियों से जूझने भी लगे हैं। जगपतिया का खेत महीप सिंह नहीं कटवा पाते क्योंकि वह गरीब, अछूत और पिछड़े वर्ग के वंचितों को एकजुट और संघर्ष–सक्षम बनाने में सक्षम होता है। उपन्यासकार की यह चिंता उपन्यासों में कई जगह सिर उठाती है कि लोग अकेले–अकेले क्यों प्रतिवाद करते हैं? यह निर्भ्रान्त है कि

बिना सामूहिक संघर्ष के कुछ भी हासिल नहीं होगा। 'बिना दरवाजे का मकान' में कहा गया है– ''डी.टी.सी. हो या और कोई व्यवस्था जब तक उसे एक बड़े समूह से टकराने का भय नहीं होता, कुछ नहीं करती।' 'आकाश की छत' में दलित जन कामरेड जगत के नेतृत्व में एकजुट हो रहे हैं।''[9] कामरेड जगत अकेली लड़ाई और किसी एक के प्रति केंद्रित लड़ाई के अंतविर्रोधों से अवगत हैं। वे अंतिम विकल्प के तौर पर हिंसा को त्याज्य नहीं मानते–'हमें तो उस व्यवस्था को खत्म करना होगा, जिसमें सेठ पैदा होते रहते हैं, लेकिन यह भी तुम ठीक ही कहते हो कि हमें कभी–कभी सेठ को भी मारना होता है'।

रामदरष मिश्र ने अपने आंचलिक उपन्यासों में जीवन की सत्यता से परिवय कराया है। जिसमें जीवन का यथार्थ संस्कृति सभ्यता और ग्रामीण क्षेत्र की परम्पराओं को अपनी रचना के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति को संस्कार वान बनाने का प्रयास किया जिससे लोग अपनी संस्कृति से जुड़े रहे और समय के मूल को समझें।

सन्दर्भ सूची

3. रामदरश मिश्र के उपन्यासों में ग्राम चेतना (जल टूटता हुआ' के संदर्भ में) डॉ. ममता शर्मा राष्ट्रीय ग्रंथ प्रकाशन गांधी नगर (2002)
4. रामदरश मिश्र एक अंतर्यात्रा डॉ. प्रकाश मनु, वाणी प्रकाशन दिल्ली (2004)
5. रामदरष मिश्र, जल टूटता हुआ, पृश्ठ–153, 154
6. रामदरश मिश्र के उपन्यासों की वैचारिक पृष्ठभूमि डॉ. सीमा वैश्य, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली (2004)
7. रामदरश मिश्र की कवितारू सृजन के रंग डॉ. सूर्यदीन यादव, शांति पुस्तक भंडार, दिल्ली (2005)
8. रामदरश मिश्र के उपन्यासों में गृह– परिवार डॉ. यशवंत गोस्वामी, नया साहित्य केंद्र, दिल्ली (2005)
9. रामदरश मिश्र के उपन्यासों में नारी डॉ. मनहर गोस्वामी, नया साहित्य केंद्र, दिल्ली (2005)